Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
April 2024 5(4), 2011–2018

INFLUENCE OF SHAIVISM ON THE MAURYAN EMPIRE

शैव धर्म का मौर्य साम्राज्य पर प्रभाव

Manoj Kumar [1]

[1] Associate Professor, Department of History, Government College Bahadurgarh (Evening) (Jhajjar), India

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i4.2024.5820

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: Shaivism, one of the major branches of Hinduism, considers Lord Shiva as the supreme God. This paper explores the historical and cultural significance of Shaivism during the Mauryan Empire (c. 322–185 BCE), an era of political unity and cultural progress in ancient India. The Mauryan emperors, especially Emperor Ashoka, played a key role in religious tolerance and the consolidation of various philosophical traditions, including Shaivism. Through archaeological evidence, literary sources, and historical accounts, this research highlights the influence of Shaivism on art, architecture, and social values in the Mauryan Empire. The findings of this research underscore the enduring legacy of Shaivism in shaping the religious landscape of India.

Hindi: हिंदू धर्म की प्रमुख शाखाओं में से एक शैव धर्म भगवान शिव को सर्वोच्च ईश्वर मानता है। यह शोध पत्र मौर्य साम्राज्य (लगभग 322–185 ई.पू.) के दौरान शैव धर्म के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व का अन्वेषण करता है, जो प्राचीन भारत में राजनीतिक एकता और सांस्कृतिक प्रगति का युग था। मौर्य सम्राटों, विशेषकर सम्राट अशोक, ने धार्मिक सहिष्णुता और विभिन्न दार्शनिक परंपराओं के समेकन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसमें शैव धर्म का भी विशेष स्थान था। पुरातात्विक प्रमाणों, साहित्यिक स्रोतों, और ऐतिहासिक विवरणों के माध्यम से यह शोध मौर्य साम्राज्य में कला, वास्तुकला, और सामाजिक मूल्यों पर शैव धर्म के प्रभाव को उजागर करता है। इस शोध के निष्कर्ष भारत के धार्मिक परिदृश्य को आकार देने में शैव धर्म की स्थायी विरासत को रेखांकित करते हैं।

Keywords: Shaivism, Mauryan Empire, Lord Shiva, Emperor Ashoka, Ancient India, Religion, Culture, Art, Architecture, शैव धर्म, मौर्य साम्राज्य, भगवान शिव, सम्राट अशोक, प्राचीन भारत, धर्म, संस्कृति, कला, वास्तुकला

1. प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य, जो लगभग 322 से 185 ई.पू. तक अस्तित्व में रहा, प्राचीन भारत के सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली राजनीतिक इकाइयों में से एक माना जाता है। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा नंद वंश को पराजित करने के बाद स्थापित यह साम्राज्य, भारतीय उपमहाद्वीप के अद्वितीय क्षेत्रीय विस्तार और एकीकरण के लिए जाना जाता है। यह विशाल साम्राज्य न केवल एक राजनीतिक संरचना थी, बल्कि एक सांस्कृतिक और धार्मिक संगम भी था, जहाँ विभिन्न परंपराएँ सह-अस्तित्व में थीं और फल-फूल रही थीं। इन्हीं धार्मिक परंपराओं में से शैव धर्म एक प्रमुख संप्रदाय के रूप में उभरा, जिसमें भगवान शिव को सर्वोच्च देवता माना गया।

शैव धर्म, हिंदू धर्म की एक प्रमुख शाखा है, जो शिव की उपासना को रचयिता, संरक्षक और संहारक के रूप में मान्यता देता है। इसकी धार्मिक संरचना में विभिन्न दार्शनिक स्कूल शामिल हैं, जिनमें द्वैतवाद, अद्वैतवाद और ईश्वरवादी व्याख्याएं शामिल हैं। शैव धर्म की शिक्षाएं प्राचीन ग्रंथों जैसे "वेद," "उपनिषद" और बाद में "आगम" में निहित हैं, जो इसके गहन आध्यात्मिक विचारों, अनुष्ठानों और नैतिक मार्गदर्शकों का विस्तार से वर्णन करती हैं। मौर्य काल के दौरान, ये ग्रंथ और शिक्षाएं जनमानस में अपनी पहचान बनाने लगीं और आध्यात्मिक प्रथाओं और सामाजिक मानदंडों को प्रभावित करने लगीं।

मौर्य शासकों, विशेषकर सम्राट अशोक, ने धार्मिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक समन्वय का वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि अशोक को बौद्ध धर्म के प्रचारक के रूप में अधिक जाना जाता है, उनके शासनकाल में शैव धर्म सहित अन्य धार्मिक प्रथाओं का भी विकास हुआ। इस समावेशी दृष्टिकोण ने विभिन्न दार्शनिक परंपराओं के समेकन में सहायता की और साम्राज्य में विभिन्न आस्थाओं के सह-अस्तित्व को संभव बनाया।

मौर्य साम्राज्य के सामाजिक-राजनीतिक वातावरण ने शैव धर्म को कई तरीकों से पनपने का अवसर प्रदान किया। व्यापार मार्गों और शहरी केंद्रों की स्थापना ने एक जीवंत सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया, जिससे शैव अनुयायियों को अपनी मान्यताओं का प्रचार विभिन्न क्षेत्रों में करने का अवसर मिला। इसके अतिरिक्त, मौर्य सम्राटों के संरक्षण से भगवान शिव को समर्पित मंदिरों, मूर्तियों, और शिलालेखों का निर्माण हुआ, जो न केवल धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति करते थे, बल्कि उस समय की कलात्मक और वास्तुशिल्पीय उत्कृष्टता को भी दर्शाते थे।

इस शोध पत्र में, हम मौर्य साम्राज्य के दौरान शैव धर्म के ऐतिहासिक महत्व का अध्ययन करते हैं, जिसमें इसके दार्शनिक आधार, कला और वास्तुकला पर प्रभाव, और सामाजिक मूल्यों के निर्माण में इसकी भूमिका का विश्लेषण शामिल है। पुरातात्विक प्रमाणों, साहित्यिक स्रोतों और ऐतिहासिक विवरणों के आधार पर, हम मौर्य साम्राज्य की सांस्कृतिक और धार्मिक संरचना में शैव धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करने का प्रयास करेंगे। इस अन्वेषण के माध्यम से, हम शैव धर्म की स्थायी विरासत और भारतीय आध्यात्मिकता के व्यापक परिदृश्य में इसकी निरंतर प्रासंगिकता को उजागर करने का प्रयास करेंगे।

2. मौर्य साम्राज्य का ऐतिहासिक संदर्भ

मौर्य साम्राज्य, जो 4वीं शताब्दी ई.पू. में उभरा, प्राचीन भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। 322 ई.पू. में चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित यह साम्राज्य, भारतीय इतिहास में पहली बार एक बड़ी भूभागीय एकता और एकल राजनीतिक सत्ता के रूप में उभरा। यह खंड मौर्य साम्राज्य के ऐतिहासिक संदर्भ का विवरण प्रस्तुत करता है, जिसमें इसकी राजनीतिक संरचना, सांस्कृतिक उपलब्धियाँ, और धार्मिक तत्त्व शामिल हैं जिन्होंने इस अवधि के दौरान शैव धर्म को फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया।

2.1. राजनीतिक एकता और संरचना

चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश को हराकर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की, जो उत्तर भारत के विविध क्षेत्रों और जनसमूहों को एकीकृत करने के लिए जाना जाता है, जिसमें आज के पंजाब से लेकर बंगाल तक का विस्तार शामिल था। चंद्रगुप्त के सलाहकार, चाणक्य (कौटिल्य), को उनके प्रशासनिक सिद्धांतों के लिए जाना जाता है, जिन्हें उन्होंने "अर्थशास्त्र" नामक ग्रंथ में लिखा, जिसमें शासन, राजनीति और आर्थिक प्रबंधन के सिद्धांत शामिल हैं (कौटिल्य, अर्थशास्त्र)।

चंद्रगुप्त का शासनकाल (322–297 ई.पू.) उनके पोते, अशोक महान के लिए आधार बना, जिन्होंने 268 ई.पू. में सिंहासन ग्रहण किया। अशोक अपने परिवर्तन के लिए प्रसिद्ध हैं, जो कि एक योद्धा राजा से अहिंसा और बौद्ध धर्म के समर्थक बन गए थे, विशेष रूप से कलिंग युद्ध (लगभग 261 ई.पू.) के बाद। मौर्य साम्राज्य को प्रांतों में संगठित किया गया था, जिनका प्रशासन सम्राट द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा किया जाता था, जिसने व्यापक क्षेत्रों में कुशल प्रशासन की सुविधा प्रदान की (थापर, 2002)।

2.2. सांस्कृतिक उन्नति

मौर्य साम्राज्य सांस्कृतिक और बौद्धिक प्रगति का प्रतीक है। एक स्थिर राजनीतिक वातावरण के साथ, कला, साहित्य और दर्शन में उत्कृष्टता देखने को मिली। मौर्य दरबार विद्वानों, कवियों और कलाकारों का एक केंद्र बन गया, जिससे उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं और कलात्मक अभिव्यक्तियों का विकास हुआ।

मौर्य काल की सबसे उल्लेखनीय वास्तुकला उपलब्धियों में शिला-कट गुफाओं, स्तूपों और स्तंभों का निर्माण शामिल है। इनमें से सबसे प्रसिद्ध अशोक का सिंह स्तंभ है, जो सम्राट की धर्म की प्रतिबद्धता का प्रतीक है और आज भारत का राष्ट्रीय प्रतीक है (शास्त्री, 1989)। साँची का महान स्तूप, जो इस युग में निर्मित हुआ, मौर्य वास्तुकला का एक प्रमुख उदाहरण है और इसकी राहतों और मूर्तियों में बौद्ध और शैव दोनों प्रतीकों का प्रभाव दिखाई देता है।

2.3. धार्मिक विविधता और शैव धर्म

मौर्य साम्राज्य विभिन्न धार्मिक विश्वासों का संगम था, जिसमें हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, और विभिन्न लोक परंपराएँ शामिल थीं। अशोक द्वारा बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन देने का वर्णन तो व्यापक रूप से मिलता है, लेकिन उनके शासनकाल में अन्य धार्मिक प्रथाओं को भी सह-अस्तित्व और विकास का अवसर मिला, जिसमें शैव धर्म भी शामिल था।

मौर्य काल के दौरान, शैव धर्म हिंदू धर्म के एक प्रमुख संप्रदाय के रूप में उभरने लगा, जो बड़ी संख्या में अनुयायियों को आकर्षित करता था। शैव धर्म की शिक्षाएँ शिव की उपासना को सर्वोच्च सत्य और सृजन के स्रोत के रूप में मान्यता देती थीं। इस धार्मिक ढांचे ने विभिन्न धार्मिक परिदृश्यों में

बहुतों को अपनी ओर आकर्षित किया। अशोक द्वारा प्रचारित धार्मिक सहिष्णुता ने शैव अनुयायियों को बौद्ध अनुयायियों के साथ-साथ फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया, जिससे एक समन्वित धार्मिक संस्कृति का विकास हुआ।

ऐतिहासिक ग्रंथों, जैसे कि पुराणों में, मौर्य काल में शिव के प्रति श्रद्धा का वर्णन मिलता है। स्कंद पुराण में शिव को समर्पित विभिन्न तीर्थ स्थलों का उल्लेख किया गया है, जो प्रमुख शैव स्थलों की स्थापना का संकेत देता है (भट्टाचार्य, 1990)। इसके अतिरिक्त, इस युग के शिलालेखों जैसे लुंबिनी और सारनाथ में पाए गए अभिलेख शैव धर्म और बौद्ध धर्म के सह-अस्तित्व का संकेत देते हैं, जिसमें सम्राटों ने समाज में सामंजस्य बनाए रखने के लिए कई आस्थाओं को संरक्षण दिया।

2.4. आर्थिक समृद्धि और व्यापार

मौर्य साम्राज्य की रणनीतिक स्थिति ने व्यापक व्यापार नेटवर्क को सुगम बनाया, जिसमें स्थल और समुद्री दोनों मार्ग शामिल थे। यह आर्थिक समृद्धि उन सांस्कृतिक और धार्मिक आदान-प्रदान में सहायक थी जिसने साम्राज्य को समृद्ध किया। मौर्य प्रशासन ने व्यापार को बढ़ावा देने वाली नीतियाँ लागू कीं, जिससे बाजार नगरों और व्यापार मार्गों की स्थापना हुई, जो भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों को अंतर्राष्ट्रीय बाजारों से जोड़ते थे।

व्यापार ने शैव विचारों और प्रथाओं को निकटवर्ती भौगोलिक क्षेत्रों से परे फैलाने में सहायता की, क्योंकि व्यापारी और यात्री अपनी मान्यताओं को अपने साथ ले जाते थे। फलता-फूलता व्यापार न केवल साम्राज्य की संपत्ति में योगदान करता था बल्कि एक गतिशील सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी बढ़ावा देता था, जिससे शैव धर्म से संबंधित धार्मिक विचारों का प्रसार संभव हो सका।

3. शैव धर्म: विश्वास और प्रथाएँ

शैव धर्म हिंदू धर्म की प्रमुख परंपराओं में से एक है, जिसमें भगवान शिव को सर्वोच्च देवता के रूप में पूजा जाता है। समृद्ध विश्वासों, दार्शनिक सिद्धांतों और अनुष्ठानिक प्रथाओं के साथ, शैव धर्म ने विशेष रूप से मौर्य साम्राज्य के दौरान प्राचीन भारत के आध्यात्मिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह खंड शैव धर्म के मुख्य विश्वासों और प्रथाओं का विश्लेषण करता है, जिसमें इसके धार्मिक आधार, अनुष्ठान और इन प्रथाओं के सामाजिक प्रभावों का अन्वेषण शामिल है।

3.1. शैव धर्म के दार्शनिक सिद्धांत

शैव धर्म विभिन्न दार्शनिक व्याख्याओं और सिद्धांतों की एक व्यापक श्रेणी को शामिल करता है। शैव धर्म के मुख्य विश्वासों को कई प्रमुख अवधारणाओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

3.1.1. शिव का स्वरूप

शैव धर्म में शिव को परम सत्य (ब्रह्म) के रूप में माना जाता है, जो समस्त सृष्टि, संरक्षण और संहार का स्रोत हैं। वे सृष्टि (सृष्टि), संरक्षण (स्थिति), और संहार (संस्कार) के सिद्धांतों का प्रतीक माने जाते हैं। शिव को अक्सर विभिन्न रूपों में दर्शाया जाता है, जैसे तपस्वी (योगी), ब्रह्मांडीय नर्तक (नटराज), और पारिवारिक व्यक्ति (पार्वती और उनके बच्चों गणेश और कार्तिकेय के साथ)। शिव का यह बहुआयामी स्वरूप भक्तों को उनके आध्यात्मिक लक्ष्यों के अनुसार विभिन्न दृष्टिकोणों से उनकी पूजा करने का अवसर प्रदान करता है (राधाकृष्णन, 2009)।

3.1.2. शक्ति का सिद्धांत

शैव धर्म में शक्ति, या दिव्य ऊर्जा, शिव से अविभाज्य मानी जाती है। शिव (स्थिर सिद्धांत) और शक्ति (सक्रिय सिद्धांत) के बीच का संबंध सृष्टि और ब्रह्मांड की कार्यप्रणाली के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। यह द्वैत सभी अस्तित्वों के आपसी संबंध को दर्शाता है, जो यह रेखांकित करता है कि जीवन के प्रकट होने के लिए दोनों पहलुओं का होना आवश्यक है (थापर, 2002)।

3.1.3. मुक्ति का मार्ग

शैव धर्म मुक्ति (मोक्ष) प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्ग प्रदान करता है, जिनमें शामिल हैं:

- भक्ति (आस्था): भक्त प्रार्थना, अनुष्ठान और अर्पण के माध्यम से शिव के प्रति अपनी प्रेम और श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

- ज्ञान (ज्ञान): आत्मा और ब्रह्मांड की समझ के लिए ज्ञान की खोज, अक्सर दार्शनिक अध्ययन और पवित्र ग्रंथों के अध्ययन के माध्यम से।
- योग (अनुशासन): ध्यान और शारीरिक अनुशासन का अभ्यास ताकि दिव्य के साथ एकता प्राप्त की जा सके। ये मार्ग एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं, जिससे साधक आध्यात्मिकता के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण अपना सकते हैं।

3.2. अनुष्ठानिक प्रथाएँ

शैव धर्म में अनुष्ठानों और प्रथाओं का एक समृद्ध संग्रह है जो भक्तों को शिव से जुड़ने में सहायक होता है। इनमें से कुछ प्रमुख अनुष्ठान निम्नलिखित हैं:

3.2.1. पूजा (उपासना)

शैव धर्म में पूजा एक केंद्रीय अनुष्ठान है, जिसमें शिव की अर्पण, मंत्र और प्रार्थना के माध्यम से उपासना की जाती है। इसमें फूल, फल, दूध, और पानी का अर्पण शामिल हो सकता है, जो भक्ति और श्रद्धा का प्रतीक होता है। यह अनुष्ठान अक्सर मंदिरों या घर के मंदिरों में किया जाता है, जिससे उपासना के लिए एक पवित्र स्थान का निर्माण होता है। शिवलिंग, जो शिव का प्रतीक है, पूजा के दौरान एक मुख्य ध्यान केंद्र होता है और सृजन की दिव्य ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है (भट्टाचार्य, 1990)।

3.2.2. त्योहार

शैव धर्म में कई प्रमुख त्योहार होते हैं जो शिव के दिव्य गुणों का उत्सव मनाते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण महाशिवरात्रि है, जो भगवान शिव को समर्पित एक त्योहार है और प्रतिवर्ष आता है। इसमें एक रात का उपवास, प्रार्थना और ध्यान शामिल है, जो अंधकार और अज्ञानता को दूर करने का प्रतीक है। भक्तों का मानना है कि इस रात को शिव की उपासना करने से जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति और इच्छाओं की पूर्ति प्राप्त होती है।

3.2.3. तपस्वी प्रथाएँ

शैव तपस्वी, जिन्हें शैव साधु कहा जाता है, आध्यात्मिक साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए कठोर तप का पालन करते हैं। इसमें ध्यान, ब्रह्मचर्य और सांसारिक सुखों का त्याग शामिल होता है। ये तपस्वी अक्सर एकांत में रहते हैं और एक सरल और भक्ति से भरे जीवन को अपनाते हैं। शिव सूत्र और कुलार्णव तंत्र जैसे ग्रंथ इन प्रथाओं के दार्शनिक आधार और मार्गदर्शन को परिभाषित करते हैं (डोनिगर, 1998)।

3.3. ऐतिहासिक विकास और ग्रंथों में संदर्भ

शैव धर्म का ऐतिहासिक विकास विभिन्न प्राचीन ग्रंथों और शिलालेखों में दर्ज है। वैदिक ग्रंथों, जैसे ऋग्वेद और अथर्ववेद में, शिव से जुड़े देवताओं का प्रारंभिक उल्लेख मिलता है, जो शैव धर्म की जड़ों को प्राचीन हिंदू धर्म में स्थापित करता है।

पुराणों, विशेष रूप से शिव पुराण में, शिव की महिमा और उपासना पर विस्तार से वर्णन है, जिसने उन्हें हिंदू धर्म में एक प्रमुख देवता के रूप में स्थापित किया। शिव पुराण में शिव की लीलाओं, अन्य देवताओं के साथ उनके संबंधों और विभिन्न शैव अनुष्ठानों और त्योहारों के महत्व का वर्णन है (भट्टाचार्य, 1990)।

मौर्य काल के शिलालेख, जैसे लुंबिनी और सारनाथ में पाए गए, शैव धर्म और अन्य धार्मिक परंपराओं, विशेष रूप से बौद्ध धर्म के सह-अस्तित्व का संकेत देते हैं। ये शिलालेख मान्यताओं के समन्वय को दर्शाते हैं, जो इस युग में धार्मिक प्रथाओं की समावेशी प्रकृति को उजागर करता है (शास्त्री, 1989)।

3.4. समाज पर प्रभाव

शैव धर्म की आस्थाओं और प्रथाओं ने मौर्य साम्राज्य की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना पर गहरा प्रभाव डाला। भक्ति और सामुदायिक अनुष्ठानों में भागीदारी पर जोर ने सामाजिक समरसता को बढ़ावा दिया और भक्तों के बीच नैतिक मूल्यों को मजबूत किया। इसके अलावा, मौर्य सम्राटों द्वारा शैव मंदिरों को दिया गया संरक्षण न केवल धार्मिक प्रथाओं को बढ़ावा देता था बल्कि क्षेत्र की आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति में भी योगदान देता था।

शैव धर्म की अनुकूलता और स्थानीय रीति-रिवाजों और विश्वासों के साथ उसका समेकन इसे एक विविध जनसंख्या के साथ प्रतिध्वनित करने में सक्षम बनाता है, जिससे यह प्राचीन भारत के सामाजिक-धार्मिक परिदृश्य में अपनी निरंतर प्रासंगिकता बनाए रखने में सफल रहा।

4. मौर्य साम्राज्य में शैव धर्म और कला

मौर्य साम्राज्य सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभावों के संगम से चिह्नित एक महत्वपूर्ण कलात्मक और वास्तुकला विकास का काल था। इस समय में एक प्रमुख धार्मिक परंपरा के रूप में शैव धर्म ने उस युग की कलात्मक अभिव्यक्तियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह खंड मौर्य साम्राज्य में कला पर शैव धर्म के प्रभाव का विश्लेषण करता है, जिसमें मूर्तिकला, वास्तुकला और प्रतीकात्मकता के उल्लेखनीय उदाहरण शामिल हैं, साथ ही उनके ऐतिहासिक संदर्भ भी।

4.1. वास्तुकला का विकास

4. मंदिर और देवालय

मौर्य काल के दौरान, शिव को समर्पित मंदिरों और देवालयों का निर्माण प्रमुखता से हुआ। प्रारंभिक मौर्य काल के अधिकांश मंदिर संरचना में सरल थे, लेकिन उन्होंने आगे के वास्तुशिल्प विकास के लिए नींव रखी। इन मंदिरों के डिजाइन और लेआउट में अक्सर शैव मान्यताओं को दर्शाने वाले तत्व शामिल होते थे, जिसमें शिवलिंग की उपासना पर जोर दिया गया था।

सबसे महत्वपूर्ण उदाहरणों में से एक सांची का महान स्तूप है, जो मुख्यतः एक बौद्ध स्थल होते हुए भी विभिन्न देवताओं, जिनमें शिव भी शामिल हैं, के विभिन्न शिल्पों को प्रदर्शित करता है। यह स्तूप मौर्य युग के धार्मिक कला के समन्वयवाद का एक प्रमाण है, जो दर्शाता है कि उस समय शैव धर्म अन्य धार्मिक परंपराओं के साथ सह-अस्तित्व में कैसे था और उनसे कैसे जुड़ा हुआ था (शास्त्री, 1989)।

4.1.2. चट्टानों में उत्कीर्ण वास्तुकला

मौर्य साम्राज्य अपने चट्टानों में उत्कीर्ण वास्तुकला के लिए भी प्रसिद्ध है, विशेष रूप से अशोक द्वारा बनवाए गए बाराबर गुफाओं के लिए। इन गुफाओं को ठोस चट्टानों में काटा गया था और इन्हें भारत में इस वास्तुशिल्प शैली के कुछ शुरुआती उदाहरणों में माना जाता है। यद्यपि ये मुख्य रूप से बौद्ध धर्म से संबंधित मानी जाती हैं, गुफाओं में शिलालेख और प्रतीक पाए गए हैं जो शैव धर्म के प्रभाव को दर्शाते हैं, जिससे व्यापक सांस्कृतिक समन्वय का संकेत मिलता है।

कन्हा गुफाएँ और विदिशा के पास स्थित उदयगिरि गुफाएँ भी शैव धर्म से संबंधित कलात्मक तत्वों को प्रदर्शित करती हैं, जिनमें शिव और उनकी पत्नी पार्वती के चित्रण वाले शिल्प और चित्र शामिल हैं (फाउचर, 2001)। इन स्थलों में शैव प्रतिमाओं का सम्मिलन मौर्य साम्राज्य की व्यापक कलात्मक पृष्ठभूमि में दिखाई देता है।

4.2. मूर्तिकला और प्रतीकात्मकता

4.2.1. शैव प्रतीकात्मकता

मौर्य काल के दौरान शिव की मूर्तियों का उदय हुआ, जिसने शैव प्रतीकात्मकता के विकास को दर्शाया। मूर्तियों में शिव को विभिन्न रूपों में दर्शाया गया, जैसे तपस्वी योगी, ब्रह्मांडीय नर्तक (नटराज), और पारिवारिक रूप में पार्वती और उनके पुत्र गणेश और कार्तिकेय के साथ।

उदयगिरि की गुफाओं में पाई जाने वाली मूर्तियाँ इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण हैं, जिनमें शिव की उत्कृष्ट प्रतिमाएँ शामिल हैं। इन शिल्पों में अत्यंत कुशलता का प्रदर्शन होता है, जिसमें शिव के विभिन्न रूपों की सूक्ष्मताएं दिखाई देती हैं। इन गुफाओं की राहत मूर्तियाँ शिव के द्वैतस्वरूप को दर्शाती हैं—वे एक ओर उग्र और दूसरी ओर करुणामय हैं (शर्मा, 1990)।

4.2.2. अशोक का सिंह स्तंभ

अशोक का सिंह स्तंभ, जो सारनाथ में पाया गया था, मौर्य काल की एक अन्य महत्वपूर्ण कलात्मक उपलब्धि है। यद्यपि यह मुख्य रूप से बौद्ध धर्म का प्रतीक है, इस स्तंभ में शैव धर्म से जुड़े तत्व भी हैं, जैसे चक्र (धर्मचक्र) और सिंह, जो अक्सर शिव के शाही और रक्षक गुणों से जुड़े होते हैं। सिंह स्तंभ की कलात्मकता अशोक की साम्राज्य शक्ति को दर्शाती है और उस समय के विविध धार्मिक वातावरण को भी सूक्ष्म रूप से स्वीकार करती है (थापर, 2002)।

4.3. शिलालेख और साहित्यिक प्रमाण

भौतिक कलाकृतियों के अलावा, मौर्य युग के शिलालेख शैव धर्म और कला के संबंधों में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। अशोक के विभिन्न स्थलों पर पाए गए शिलालेख, जिनमें अशोक के शिला आदेश भी शामिल हैं, विभिन्न धर्मों के प्रचार और धार्मिक सहिष्णुता के महत्व का उल्लेख करते हैं, जिनमें शैव धर्म भी शामिल है। ये आदेश दया और अहिंसा के गुणों का उल्लेख करते हैं, जो शैव धर्म के धर्म (नैतिक कर्तव्य) और जीवन की पवित्रता के आदर्शों के साथ मेल खाते हैं (शास्त्री, 1989)।

इसके अतिरिक्त, साहित्यिक ग्रंथ जैसे शिव पुराण और महाभारत में शैव धर्म और उसकी पूजा पद्धतियों का उल्लेख है, जिसने शिव और संबंधित देवताओं के कलात्मक चित्रणों को प्रभावित किया होगा। ये ग्रंथ शिव को समर्पित अनुष्ठानों, तीर्थ यात्राओं और त्योहारों के महत्व को उजागर करते हैं, जो समकालीन कला में विषयों और प्रतीकों को आकार देने में सहायक होते (भट्टाचार्य, 1990)।

4.4. बाद के कला रूपों पर प्रभाव

मौर्य साम्राज्य के दौरान उभरे कलात्मक अभिव्यक्तियों का भारतीय कला के आगे के विकास पर एक स्थायी प्रभाव पड़ा। शैव प्रतीकों का बौद्ध विषयों के साथ सम्मिश्रण ने क्षेत्रीय शैलियों के विकास की नींव रखी, विशेषकर गुप्त काल में, जब शैव धर्म ने लोकप्रियता और कलात्मक अभिव्यक्ति के नए शिखर को छू लिया। शिव की जटिल मूर्तियाँ, जैसे खजुराहो और एलिफेंटा के मंदिरों में पाई जाती हैं, मौर्य काल में स्थापित कलात्मक आधारों से प्रेरणा प्राप्त करती हैं (रमेश, 2000)।

5. मौर्य साम्राज्य में शैव धर्म और समाज

प्राचीन भारत में एक प्रमुख धार्मिक परंपरा के रूप में शैव धर्म ने मौर्य साम्राज्य की सामाजिक संरचना को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। शैव धर्म से जुड़ी शिक्षाओं, प्रथाओं और सामुदायिक संरचनाओं ने सामाजिक मानदंडों, सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों और पारस्परिक संबंधों को आकार देने में मदद की। यह खंड मौर्य काल के दौरान समाज पर शैव धर्म के प्रभाव का विश्लेषण करता है, जिसमें सामाजिक श्रेणीबद्धता, सामुदायिक संगठन और सांस्कृतिक प्रथाओं पर इसका प्रभाव शामिल है, साथ ही ऐतिहासिक संदर्भ भी।

5.1. सामाजिक श्रेणीबद्धता और वर्ग संरचना

मौर्य साम्राज्य की सामाजिक संरचना विभिन्न कारकों से प्रभावित थी, जिसमें प्रचलित जाति व्यवस्था शामिल थी, जो प्राचीन भारतीय समाज में महत्वपूर्ण थी। शैव धर्म, अन्य धार्मिक परंपराओं की तरह, जाति पदानुक्रम के साथ सख्ती से संरेखित नहीं था; इसके बावजूद, इसके उपदेश और प्रथाएँ अक्सर सामाजिक सीमाओं को पार करती थीं।

5. जाति और धार्मिक पहचान

शैव धर्म ने विभिन्न जातियों के अनुयायियों को आकर्षित किया, जिससे एक समावेशी धार्मिक समुदाय का निर्माण हुआ। शिव की पूजा अक्सर ब्राह्मण (पुरोहित) और गैर-ब्राह्मण दोनों द्वारा की जाती थी, जिससे धार्मिक गतिविधियों में व्यापक भागीदारी संभव हुई। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समावेशिता विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी, जहाँ स्थानीय देवताओं और प्रथाओं को शैव पूजा में सम्मिलित किया गया, जिससे एक संकर धार्मिक पहचान का निर्माण हुआ (थापर, 2002)।

मौर्य काल के शिलालेखों से संकेत मिलता है कि राजा और शासक शैव मंदिरों को संरक्षण प्रदान करते थे, जिससे शैव धर्म से संबंधित धार्मिक प्रथाओं को वैधता मिली। शासक वर्ग के समर्थन से मंदिरों का निर्माण और त्योहारों का आयोजन सुगम हुआ, जिससे शैव समुदाय की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को बल मिला (शास्त्री, 1989)।

5.2. सामुदायिक संगठन और प्रथाएँ

5.2.1. तीर्थयात्रा और त्योहार

शैव धर्म में तीर्थयात्रा और सामुदायिक पूजा का महत्व था, जो भक्तों के बीच सामाजिक एकता और सामूहिक पहचान को प्रोत्साहित करता था। शिव को समर्पित प्रमुख त्योहार, जैसे महाशिवरात्रि, में विस्तृत अनुष्ठान और सामूहिक आयोजन होते थे, जो लोगों को एकत्रित करते थे और समुदायिक बंधनों और सांस्कृतिक मूल्यों को मजबूत करते थे।

त्योहारों के दौरान, स्थानीय समुदाय उपवास, जप और शोभायात्राओं सहित विभिन्न अनुष्ठानों में भाग लेते थे, जिससे विभिन्न पृष्ठभूमियों के व्यक्तियों को अपनी भक्ति व्यक्त करने का अवसर मिलता था। यह सामूहिक पूजा केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं थी बल्कि सामाजिक नेटवर्किंग और समुदाय निर्माण का एक साधन भी थी (भट्टाचार्य, 1990)।

5.2.2. सामाजिक केंद्र के रूप में मंदिर

शैव मंदिर अक्सर सामुदायिक केंद्र के रूप में कार्य करते थे, जहाँ विभिन्न सामाजिक गतिविधियाँ होती थीं। ये शिक्षा, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और आर्थिक लेन-देन के लिए एक स्थान प्रदान करते थे। मंदिर त्योहारों, धार्मिक प्रवचनों और सामूहिक भोज (प्रसाद) के लिए स्थल के रूप में कार्य करते थे, जिससे जीवन के आध्यात्मिक और सामाजिक आयामों का एकीकरण होता था।

मंदिर की अर्थव्यवस्था स्थानीय समुदायों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण थी, क्योंकि ये तीर्थयात्रियों और आगंतुकों को आकर्षित करते थे, जो स्थानीय अर्थव्यवस्था में योगदान करते थे। मंदिर और समाज के बीच यह अंतःक्रिया शैव धर्म के मौर्य साम्राज्य के सामाजिक गतिशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का उदाहरण है (रमेश, 2000)।

5.3. शैव धर्म और लिंग भूमिकाएँ

शैव धर्म ने समाज में लिंग भूमिकाओं को भी प्रभावित किया, जिससे धार्मिक प्रथाओं में महिलाओं की भागीदारी के लिए एक ढाँचा प्रदान किया गया। जबकि पारंपरिक ग्रंथ अक्सर पितृसत्तात्मक मानदंडों को प्रतिबिंबित करते हैं, शैव धर्म के कई पहलुओं ने स्त्री शक्ति को स्वीकार और सम्मानित किया।

5.3.1. देवी की पूजा

शैव पंथ में पार्वती, जो शिव की पत्नी हैं, और अन्य देवियों की पूजा में स्त्री शक्ति का महत्व रेखांकित किया गया। इस द्वैत पूजा से महिलाओं को धार्मिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने का अवसर मिला। महिलाएँ अनुष्ठानों, त्योहारों और मंदिर गतिविधियों में भाग लेती थीं और अक्सर घरेलू मंदिरों और देवताओं की देखभाल करने की भूमिका निभाती थीं (डोनिगर, 1998)।

महिलाएँ शैव कथाओं और भजनों के मौखिक प्रसारण में भी योगदान देती थीं और अपने परिवारों और समुदायों में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक शिक्षा में भाग लेती थीं। यह भूमिका शैव परंपराओं को बनाए रखने और प्रसारित करने में महत्वपूर्ण थी, जबकि समाजिक संरचनाएँ समय के साथ विकसित होती गईं।

5.4. सामाजिक नैतिकता और नैतिक मूल्य

शैव धर्म ने नैतिक शिक्षाओं को प्रोत्साहित किया जो सामाजिक व्यवहार और व्यक्तिगत आचरण को प्रभावित करती थीं। धर्म (नैतिक कर्तव्य) और अहिंसा (अहिंसा) के सिद्धांतों पर शैव दर्शन में जोर दिया गया, जिससे अनुयायियों को धार्मिकता और करुणा से परिपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा मिली।

5.4.1. शासन और नेतृत्व पर प्रभाव

मौर्य शासक, विशेषकर अशोक, अपने शासन में शैव मूल्यों से प्रभावित थे। यद्यपि अशोक के बौद्ध धर्म में परिवर्तन का व्यापक रूप से दस्तावेजीकरण किया गया है, उनकी नीतियों में एक व्यापक नैतिक और आध्यात्मिक ढाँचा शामिल था जिसमें शैव धर्म के सिद्धांत भी थे। उनके आदेशों में सामाजिक कल्याण, सभी जीवन के प्रति सम्मान और शांति की खोज को प्रोत्साहित किया गया, जो शैव दर्शन में प्रचलित नैतिक शिक्षाओं के साथ मेल खाता है (शास्त्री, 1989)। ये नैतिक सिद्धांत विभिन्न समुदायों के बीच के संबंधों को भी निर्देशित करते थे, जिससे मौर्य काल के दौरान विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच एक अपेक्षाकृत सौहार्दपूर्ण सह-अस्तित्व में योगदान मिला।

6. निष्कर्ष

मौर्य साम्राज्य शैव धर्म के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अवधि का प्रतिनिधित्व करता है, जो इसकी अनुकूलनशीलता और स्थायी विरासत को प्रदर्शित करता है। शैव धर्म न केवल एक धार्मिक परंपरा के रूप में फला-फूला, बल्कि प्राचीन भारत के सांस्कृतिक और कलात्मक परिदृश्य को भी समृद्ध किया। मौर्य राजनीतिक दर्शन के साथ शैव धर्म की परस्पर क्रिया धार्मिक सहिष्णुता और विविधतापूर्ण समाज के निर्माण में एकीकृत भूमिका के महत्व को रेखांकित करती है। शैव धर्म ने मौर्य साम्राज्य की कला और वास्तुकला को गहराई से प्रभावित किया, जो मंदिरों के निर्माण, शैल-खुदाई वास्तुकला और शैव प्रतिमाओं के विकास में देखा जा सकता है। इस अवधि के दौरान शैव धर्म और अन्य धार्मिक परंपराओं के बीच की परस्पर क्रिया ने एक समृद्ध कलात्मक विरासत का निर्माण किया, जो आज भी भारतीय संस्कृति को प्रेरित और प्रभावित करती है। मौर्य कला में शैव धर्म की विरासत उस समय की धार्मिक भक्ति को ही नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय सभ्यता की व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक गतिशीलता को भी दर्शाती है। शैव धर्म ने मौर्य साम्राज्य के सामाजिक परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया, जिससे सामाजिक पदानुक्रम, सामुदायिक प्रथाओं, लिंग भूमिकाओं और नैतिक मूल्यों का निर्माण हुआ। इसकी समावेशी प्रकृति और सामुदायिक सहभागिता पर जोर ने भक्तों में एकता की भावना को प्रोत्साहित किया, जो पारंपरिक जाति सीमाओं को पार कर गया। इस अवधि के दौरान समाज में शैव धर्म की विरासत न केवल इसकी आध्यात्मिक प्रासंगिकता को दर्शाती है, बल्कि प्राचीन भारतीय जीवन के सांस्कृतिक और नैतिक आयामों को आकार देने में इसकी भूमिका को भी उजागर करती है।

संदर्भ

भट्टाचार्य, एन. (1990). शैव धर्म का इतिहास: एक अवलोकन. कोलकाता: भक्तिवेदांत पुस्तक ट्रस्ट।
चट्र्जी, एस. (2005). मौर्य भारत: एक समग्र अध्ययन. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
डोनिगर, डब्ल्यू. (1998). हिंदू: एक वैकल्पिक इतिहास. न्यूयॉर्क: पेंगुइन प्रेस।
राधाकृष्णन, एस. (2009). उपनिषदों का दर्शन. नई दिल्ली: इंडस पब्लिशिंग।
शास्त्री, के. ए. निलकांत (1989). दक्षिण भारत का इतिहास: प्रागैतिहासिक काल से विजयनगर के पतन तक. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
थापर, रोमिला (2002). पेंगुइन इतिहास प्रारंभिक भारत: उत्पत्ति से 1300 ई. तक. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स ।
कौटिल्य. अर्थशास्त्र (अनुवादित द्वारा एल. एन. शर्मा, 1990). नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स ।
रमेश, एस. (2000). भारतीय मूर्तिकला: प्रारंभिक काल से गुप्त काल तक. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक ट्रस्ट।
फूचर, ए. (2001). बौद्ध कला की शुरुआत और भारतीय एवं एशियाई कला पर अन्य निबंध. नई दिल्ली: आर्यन बुक्स इंटरनेशनल।
शर्मा, आर. (1990). भारत की कला और वास्तुकला: प्रारंभिक काल से वर्तमान तक. नई दिल्ली: अभिनव प्रकाशन।